बैंक के कर्मचारी के चुनाव के बाद, वह पद से हटाए जाने के लिए भी उत्तरदायी नहीं है। इसलिए याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वकील के तर्क को खारिज किया जाना चाहिए।

(4) परिणामस्वरूप, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि प्रत्यर्थी 4 समिति के सदस्य के रूप में चुनाव लड़ने के लिए पात्र था और उसने चुनाव के बाद कोई अयोग्यता नहीं झेली है ताकि वह समिति के सदस्य के रूप में बने रहने के लिए अयोग्य हो जाए।

(5) यह देखा जा सकता है कि याचिकाकर्ता को दूसरे आधार पर भी खारिज किया जाना चाहिए। वह रसूलपुर को-ऑपरेटिव क्रेडिट एंड सर्विस सोसाइटी लिमिटेड के सदस्य हैं और उनके पास प्रतिवादी 4 के *चुनाव को* चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है। रसूलपुर सहकारी समिति बैंक के सदस्यों में से एक है और याचिकाकर्ता उस समिति का अधिकृत प्रतिनिधि नहीं है जो चुनाव में भाग ले सकता है क्योंकि वह मतदाता नहीं है। इसके अलावा, भले ही चुनाव को चुनौती दी जानी थी, लेकिन यह एक पीड़ित पक्ष के लिए अधिनियम की धारा 102 के तहत चुनाव विवाद उठाने के लिए खुला था। इस उपाय का सहारा नहीं लेने के कारण, याचिकाकर्ता के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत सीधे इस अदालत से संपर्क करने का अधिकार नहीं है।

(6) ऊपर दर्ज किए गए कारणों के लिए, रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं है और इसे बिना किसी शुल्क आदेश के खारिज कर दिया जाता है।

जे एस टी।

न्यायमूर्ति डॉ. सरोजनी सक्सेना के समक्ष

वेद प्रकाश और अन्य,-*याचिकाकर्ता*

बनाम

हरियाणा राज्य,-उत्तरदाता

***सीआरएल 1997* का आर. 638**

16 अप्रैल, 1998

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 319-अन्य व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करने की शक्ति-ऐसी शक्ति का प्रयोग मुकदमे के दौरान दर्ज साक्ष्य पर *किया जाना-साक्ष्य-का अर्थ।*

अभिनिर्धारित किया गया कि मुकदमे का सामना कर रहे अभियुक्तों ने स्वयं पीडब्लू 1 बाल किशन से जिरह करने से इनकार कर दिया है। इसलिए, अपने आचरण से वे उक्त आदेश को चुनौती देने से वंचित हो जाते हैं। वे एक ही सांस में अनुमोदन और खंडन नहीं कर सकते हैं। जहाँ तक याचिकाकर्ताओं का संबंध है, उन्हें उस स्तर पर जिरह का कोई अधिकार नहीं था जब विवादित आदेश पारित किया गया था क्योंकि उस तारीख तक

उन्हें आरोपी व्यक्तियों के रूप में तलब नहीं किया गया था। इस प्रकार, पीडब्लू 1 बाल किशन का बयान संहिता की धारा 319 के अर्थ के भीतर "सबूत" था।

(पैरा 24 &25)

आर. एस. राय, *अधिवक्ता, याचिकाकर्ता की ओर से*

गोबिंद ढांडा, ए. ए. जी., *उत्तरदाता के लिए।*

निर्णय

डॉ. सरोजनी सक्सेना, न्यायाधीश

(1) याचिकाकर्ताओं/अभियुक्तों वेद प्रकाश और राजेश ने एडिशनल सत्र न्यायाधीश, फरीदाबाद द्वारा पारित 7 जुलाई, 1997 के विवादित आदेश पर धावा बोल दिया, जहा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 (संक्षेप में 'संहिता') के तहत दायर आवेदन को अनुमति दी गई है और याचिकाकर्ताओं को एक लंबित सत्र मामले में तलब किया गया है।

(2) मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि आरोपी पक्ष और शिकायतकर्ता पक्ष के *बीच* एक शीशम वृक्ष को लेकर विवाद था, जिसे एक समझौते के माध्यम से सुलझा लिया गया था, लेकिन फिर भी आरोपी पक्ष शिकायतकर्ता पक्ष के खिलाफ दुर्भावना रखता था। 25 नवंबर, 1996 को शाम करीब 4 बजे शिकायतकर्ता का छोटा भाई वेद राम उसके खेत में गया था, आरोपी मोहिंदर, पवन कुमार, राम सरूप, हंस राज और याचिकाकर्ता वेद प्रकाश और राजेश ने उसे ले जाने का प्रयास किया। किसी तरह वह भागने में सफल रहा। उसने शिकायतकर्ता को घटना के बारे में बताया। कुछ मिनटों के बाद उपरोक्त सभी छह व्यक्ति वहाँ आए। राजेश (याचिकाकर्ता) और आरोपी महेंद्र ने मृतक हरबंस लाई को पकड़ लिया, जबकि वेद प्रकाश (याचिकाकर्ता) और राम सरूप ने उसे बल्लम के माध्यम *से* चोट पहुंचाई, वेद प्रकाश ने हरबंस लाई के मुंह पर चोटें पहुंचाई। राम *सरूप* के कारण उन्हें बाई कलाई के नीचे बल्लम की चोट लगी। जब शिकायतकर्ता ने हस्तक्षेप करने की कोशिश की, तो आरोपी पवन और हंस राज *ने* बल्लम से उसके सिर पर चोटें पहुंचाई। शिकायतकर्ता गिर गया। उसकी चीखों ने सतीश, मनोज और वेद प्रकाश को आकर्षित किया, जो आए और हरबंस लाल और शिकायतकर्ता को आरोपी व्यक्तियों से बचा लिया। सभी अभियुक्तों ने वेद राम, सतीश, मनोज और वेद ओरकाश को भी जहाखमी किया, उन्होंने हरबंस लाल को पहले सामान्य हस्पताल, पलवल मे दाखिल किया और फिर वाहा से हरबंस लाल को सफदरजंग हस्पताल, नई दिल्ली मे रेफ़र कर दिया गया। अस्पताल ले जाते समय रास्ते में हरबंस लाल ने दम तोड़ दिया। शिकायतकर्ता के बयान के आधार पर सभी छह अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ आई. पी. सी. की धारा 148/149/323 324/302 के तहत एफ. आई. आर. दर्ज किया गया था।

(3) जाँच के बाद, संहिता की धारा 173 के तहत रिपोर्ट अदालत में प्रस्तुत की गई थी, लेकिन याचिकाकर्ता वेद प्रकाश और राजेश को कॉलम संख्या 2 में दिखाया गया था। मामला दर्ज किया गया, पाए गए अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ आरोप तय किए गए जिन्हें मुकदमे के लिए भेजा गया था।

(4) मुकदमे के दौरान बाल कृष्ण, पीडब्लू 1 का बयान दर्ज किया गया। उसी समय, अभियोजन पक्ष

ने संहिता की धारा 319 के तहत एक आवेदन दायर किया। विद्वान बचाव पक्ष के वकील ने उस स्तर पर बाल कृष्ण से जिरह करने से इनकार कर दिया क्योंकि लर्नड पब्लिक प्रॉसिक्यूटर ने इस मामले में वेद प्रकाश और राजेश को भी आरोपी के रूप में तलब करने के लिए एक आवेदन दायर किया है। इस प्रकार दलीलें सुनने के बाद, विवादित आदेश पारित किया गया और याचिकाकर्ताओं वेद प्रकाश और राजेश को उपरोक्त मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया।

(5) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि संहिता की धारा 319 के तहत किसी भी व्यक्ति को अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के साथ मुकदमे का सामना करने के लिए केवल तभी बुलाया जा सकता है जब सबूत पूरी तरह से दर्ज हो। उन्होंने कहा कि बाल कृष्ण से जिरह नहीं की गई थी और इसलिए, सत्र न्यायालय ने केवल बाल कृष्ण की जांच-इन-चीफ/बयान के आधार पर संहिता की धारा 319 के तहत याचिका को स्वीकार करने में गलती की है। इस तर्क का समर्थन करने के लिए उन्होंने आपराधिक संशोधन में दिए गए इस न्यायालय के एकल पीठ के निर्णय *पर भरोसा किया है, जो* 1998 *का संशोधन सं.* 279 (बरकत ए. यू. और एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य) 24 मार्च, 1998 को तय किया गया था।

(6) विद्वान सहायक महाधिवक्ता ने तर्क दिया कि अभियुक्त व्यक्तियों ने स्वयं पीडब्लू 1 बाल कृष्ण से जिरह करने से इनकार कर दिया, और इसलिए, विद्वान सत्र न्यायाधीश के पास विवादित आदेश पारित करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था।

(7) प्रतिद्वंद्वी दलीलों को सुनने के बाद, मेरा विचार है कि संशोधन को खारिज किया जाना चाहिए।

(8) इस संशोधन में शामिल विवाद के उचित मूल्यांकन के लिए, संहिता की धारा 319 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया हैः—

> "319. अपराध का दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही करने की शक्ति (1) जहां, किसी अपराध की किसी जांच या मुकदमे के दौरान, साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि कोई भी व्यक्ति जो अभियुक्त नहीं है, ने कोई अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है, न्यायालय ऐसे व्यक्ति के खिलाफ उस अपराध के लिए कार्यवाही कर सकता है जो उसने किया प्रतीत होता है।
>
> (2) जहां ऐसा व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित नहीं हो रहा है, उसे उपरोक्त उद्देश्य के लिए, मामले की परिस्थितियों के अनुसार, गिरफ्तार किया जा सकता है या तलब किया जा सकता है।"

संहिता की धारा 319 के तहत न्यायालय को दी गई शक्ति पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी विचार किया गया है। उन सभी निर्णयों का एक संक्षिप्त सारांश इस संशोधन को तय करने में सहायक होगा।

(9) रघुबंस दुबे *बनाम* बिहार *राज्य*[1] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि

[1] A.I.R. 1967 S.C. 1167.

एक बार किसी अपराध का संज्ञान लेने के बाद यह पता लगाना न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है कि अपराधी कौन हैं और यदि न्यायालय को पता चलता है कि पुलिस द्वारा भेजे गए व्यक्तियों के अलावा कुछ अन्य व्यक्ति शामिल हैं, तो उन व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करना उसका कर्तव्य है, क्योंकि कार्यवाही अपराध का संज्ञान लेकर शुरू की गई थी।''

(10) हरेराम सतपत बनाम टीका राम अग्रवाल[2] में *इस फैसले* के *अनुपात की फिर* से पुष्टि की गई।

{11) जे. *मरगोबुल हसन* बनाम *उत्तर प्रदेश राज्य*[3] के मामले में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने निर्णय दिया है कि यदि संहिता की धारा 319 के तहत समन आदेश केवल एक गवाह की मुख्य परीक्षा के आधार पर पारित किया जाता है, तो आदेश अवैध नहीं है।

(12) जोगिंदरी *सिंह* बनाम पंजाब *राज्य*[4], *तथ्य कि* जाँच के दौरान पुलिस ने जोगिंदर सिंह और राम सिंह को निर्दोष बताया गया और उन्होंने शेष तीन अभियुक्तों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया। उन तीन अभियुक्त व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया था। उनके खिलाफ आरोप तय किए गए। मुकदमे में दो गवाहों को दर्ज किया गया था, जिसके दौरान दोनों ने जोगिंदर सिंह और राम सिंह को घटना में फंसाया था। इसके बाद संहिता की धारा 319 के तहत एक याचिका दायर की गई थी। अभियुक्त व्यक्तियों ने परिसर में इसका विरोध किया कि सत्र न्यायाधीश के पास दोनों अभियुक्तों को बुलाने और उन्हें पुलिस रिपोर्ट में पहले से ही नामित तीन व्यक्तियों के साथ अपने मुकदमे में खड़े होने के लिए रखने का कोई अधिकार क्षेत्र या शक्ति नहीं है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने इस आपत्ति को खारिज कर दिया और धारा 319 के आवेदन पर जोगिंदर सिंह और राम सिंह को अदालत के समक्ष पहले से ही पेश किए गए तीन अभियुक्तों के साथ उक्त मुकदमे में आरोपी के रूप में पेश होने का निर्देश देने की अनुमति दी गई। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया। उन्होंने विशेष अनुमति याचिका द्वारा सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। सर्वोच्च न्यायालय ने पुरानी संहिता और नई संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार किया और निम्नलिखित टिप्पणी कीः—

> ''इस प्रकार यह स्पष्ट दिखाई देगा कि संहिता की धारा 193 के साथ पठित धारा 209 के तहत जब कोई मामला किसी अपराध के संबंध में सत्र न्यायालय को सौंपा जाता है तो सत्र न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान लेता है न कि अभियुक्त का और एक बार जब सत्र न्यायालय कुछ अभियुक्तों के खिलाफ सह-लिखित आदेश के परिणामस्वरूप मामले को समाप्त कर देता है तो धारा 319 (1) के तहत शक्तियां लागू हो सकती हैं और ऐसा न्यायालय किसी भी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में पेश नहीं कर सकता है और उसे अन्य अभियुक्तों के साथ उस अपराध के लिए मुकदमा चलाने का निर्देश दे सकता है जो इस तरह के अतिरिक्त अभियुक्त ने मुकदमे में दर्ज ''साक्ष्य'' से किया है।

[2] A.I.R. 1978 S.C. 1568.
[3] 1988 Cr. E.J. 1467.
[4] A.I.R. 1979 S.C. 339.

(13) किसहून सिंह *और* अन्य बनाम बिहार *राज्य*[5] *मे सर्वोच्च न्यायालय* ने अभिनिर्धारित किया है किः—

> "धारा 319 की उप-धारा (1) को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि जांच या मुकदमे के दौरान दिए गए साक्ष्य से यह प्रतीत होना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति ने, जो आरोपी नहीं है, कोई अपराध किया है जिसके लिए उस पर आरोपी के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है। यह हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब यह मुकदमे में साक्ष्य से प्रकट होता है और अन्यथा नहीं। इसलिए, यह उप-धारा कुछ साक्ष्यों के अस्तित्व पर विचार करती है। इसलिए, यह उप-धारा विचारण के क्रम में उपस्थित होने वाले कुछ साक्ष्यों के अस्तित्व पर विचार करती है जहां न्यायालय प्रथम दृष्टया यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि वह व्यक्ति जो उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है, वह अपराध करने में भी शामिल है जिसके लिए उस पर उन व्यक्तियों के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है जिनके नाम पहले ही पुलिस द्वारा नामित किए जा चुके हैं। यहां तक कि एक व्यक्ति जिसे पहले छुट्टी दे दी गई है, वह भी संहिता की धारा 319 द्वारा प्रदत्त शक्ति के दायरे में आएगा। इस *प्रकार*, *संहिता* की धारा 319 को वर्तमान मामले जैसे मामले में लागू नहीं किया जा सकता है, जहां मुकदमे में कोई सबूत नहीं दिया गया है, जहां से यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थी अभियोजन पक्ष द्वारा पहले से ही मुकदमे के लिए भेजे गए लोगों के साथ अपराध करने में शामिल प्रतीत होते हैं।"

यह आगे है।निम्नलिखित रूप में देखा गयाः—

> "इसलिए, धारा 319 का विस्तार सीमित है, इसमें, यह एक सक्षम प्रावधान है जिसे केवल तभी लागू किया जा सकता है जब किसी जांच या परीक्षण के दौरान साक्ष्य सामने आता है जो पहले से ही पेश किए गए व्यक्तियों के अलावा किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की संलिप्तता का खुलासा करता है।"

(14) 1980 कि क्रिमिनल मिस्क. संख्या 5484-एम (गमदूर सिंह *बनाम* पंजाब *राज्य)*, *तथ्य यह* थे कि केवल गवाह सुभाष चंदर शिकायतकर्ता की मुख्य परीक्षा दर्ज की गई थी। उसने गमदूर सिंह, विनोद कुमार, जोगिंदर सिंह, अमर सिंह आदि को आरोपी के रूप में नामित किया और इन अभियुक्त व्यक्तियों को विशिष्ट चोटों के लिए जिम्मेदार ठहराया गया, लेकिन पुलिस ने उनका चालान नहीं किया। उस समय इन अभियुक्त व्यक्तियों को भी तलब करने के लिए संहिता की धारा 319 के तहत याचिका दायर की गई थी। अभियुक्त व्यक्तियों को शिकायत सुभाष चंदर से जिरह करने का अवसर दिए बिना, संहिता की धारा 319 के तहत याचिका को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, समराला द्वारा *20* अक्टूबर, 1980 के आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई थी। 1980 के आपराधिक संशोधन संख्या 5484 में आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। यह इंगित किया गया कि विवादित आदेश अनुरूप नहीं है क्योंकि केवल सुभाष चंदर की जांच दर्ज की गई थी और आरोपी व्यक्तियों को इस गवाह से जिरह करने और प्रासंगिक तथ्यों को रिकॉर्ड पर लाने का कोई अवसर नहीं दिया गया

[5] 1993 S.C.C. (Crl.) 470.

था। यह तर्क दिया गया कि सुभाष चंदर के अधूरे बयान को ''सबूत'' नहीं कहा जा सकता है। इसका फैसला करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि:—

> ऐसा प्रतीत होता है कि संहिता की धारा 319 में ''साक्ष्य'' शब्द का उपयोग का अर्थ है "स्वीकार्य साक्ष्य"। केवल मुख्य परीक्षण में सुभाष चंदर के बयान को ऐसा ''सबूत'' नहीं कहा जा सकता है जिस पर मजिस्ट्रेट कार्रवाई कर सके। इस प्रकार मजिस्ट्रेट जल्दबाजी में अपनी राय दे रहा है। किसी भी तरह से उनके सामने कोई उचित सामग्री नहीं थी जब तक कि वे याचिकाकर्ता और उनके अन्य रिश्तेदारों के खिलाफ आगे बढ़ने से पहले सुभाष चंदर के बयान को समाप्त नहीं कर देते, जिन्हें विवादित आदेश द्वारा तलब किया गया था।

(15) उस आधार पर याचिका स्वीकार कर ली गई और विवादित आदेश को रद्द कर दिया गया।

(16) गमदूर सिंह के इस फैसले को क्रिमिनल मिस्क. 1982 का सं. *3762-एम. अमरजीत* सिंह *बनाम पंजाब राज्य और* अन्य में भरोसा किया गया था। उस मामले में आरोपी अमरजीत सिंह को परीक्षण मजिस्ट्रेट ने संहिता की धारा 173 के तहत रिपोर्ट के साथ दायर दस्तावेजों पर विचार करने के बाद आरोपमुक्त कर दिया था। जब अन्य दो अभियुक्तों और गवाहों में से एक संतोष कुमारी के खिलाफ मुकदमा आगे बढ़ा, शिकायतकर्ता ने अपनी जाँच में आपराधिकता के सकारात्मक कार्य को जिम्मेदार ठहराया, तो अभियोजन पक्ष ने अन्य दो अभियुक्तों के साथ मुकदमे का सामना करने के लिए अमरजीत सिंह को बुलाने के *लिए* एक आवेदन दायर किया। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने 25 जनवरी, 1982 के अपने आदेश के माध्यम से आवेदन को *खारिज* कर दिया। इस आदेश को संशोधन में चुनौती दी गई थी। पुनरीक्षण अदालत ने 14 जून, 1982 के अपने आदेश के माध्यम से पुनरीक्षण को स्वीकार कर लिया और अमरजीत सिंह को एक आरोपी के रूप में तलब करने के लिए अभियोजन पक्ष की याचिका को स्वीकार कर लिया। इस आदेश पर उच्च न्यायालय के समक्ष दो मामलों में आपत्ति जताई गई थी कि जब तक 2 जुलाई, 1981 के आदेश को खारिज नहीं किया जाता है, जब तक कि याचिकाकर्ता को निचली अदालत द्वारा आरोपमुक्त नहीं किया गया था, तब तक याचिकाकर्ता को मामले में आरोपी के रूप में तलब नहीं किया जा सकता है और दूसरा कि संतोष कुमारी के केवल मुख्य बयान को साक्ष्य नहीं माना जा सकता है, जिसे यह तय करने के लिए विचार में लिया जा सकता है कि किसी व्यक्ति को फंसाया गया है या नहीं।

(17) इस उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के साथ पहला विवाद प्रबल नहीं हुआ। गमदूर सिंह पर भरोसा करते हुए पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार कर लिया गया। विवादित आदेश को दरकिनार कर दिया गया और मजिस्ट्रेट को संतोष कुमारी के पूर्ण बयान के आधार पर याचिकाकर्ता को आरोपी के रूप में बुलाने के लिए अभियोजन पक्ष के आवेदन पर विचार करने का निर्देश दिया गया। इस निर्णय में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:—

> ''अभियोजन पक्ष के आवेदन की अनुमति देने वाले आदेश को रद्द कर दिया जाता है और विवादित आदेश को उस हद तक संशोधित किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप कि ट्रायल मजिस्ट्रेट संतोष कुमारी के बयान को पूरा करेगा और पहले से ही मुकदमे में खड़े आरोपी पक्ष को उससे जिरह करने का अवसर देगा। हालाँकि, यह देखा जा सकता है कि यदि अभियुक्त पहले से ही मुकदमे का सामना कर रहा है, और कथित गवाह से जिरह करने से इनकार कर देता है, तो जाँच-प्रधान

में उसका बयान धारा 319 सी. आर. पी. सी. के संदर्भ में एक बयान के रूप में माना जाएगा।

(18) इरशाद *और अन्य बनाम* उत्तर *प्रदेश राज्य और अन्य*[6] मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित निर्णय दिया हैः—

> संशोधनवादी के विद्वान वकील के इस तर्क को कायम नहीं रखा जा सकता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित सभी अतिरिक्त अभियुक्त व्यक्तियों जो जांच के दौरान शक के दायरे से हटा दिए गए थे को बुलाने से पहले प्रतिपरीक्षा एक पूर्ववर्ती शर्त होनी चाहिए। धारा 319 सी. आर. पी. सी. निचली अदालत को कुछ अन्य व्यक्तियों *को शामिल* करने का अधिकार क्षेत्र प्रदान करता है जब उनके खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला स्थापित हो जाता है तो मैं नहीं मानता कि इस स्तर पर ऐसे गवाहों से जिरह की आवश्यकता है। धारा 319 सी.आर.पी.सी. धारा 202 के समान है। अंतर यह है कि निचली *अदालत के* संहिता अधिकार क्षेत्र की धारा 319 के तहत अभियुक्त व्यक्तियों के अलावा कुछ अन्य व्यक्तियों के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला स्थापित होने पर लागू किया जा सकता है। संहिता *की धारा* 200 के तहत एक मजिस्ट्रेट शुरू में ही अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग यह पता लगाने के लिए करता है कि प्रथम दृष्टया मामला है या नहीं। लेकिन एक समानता यह है कि दोनों स्थितियों में वे व्यक्ति जिनके खिलाफ विचारण न्यायालय या मजिस्ट्रेट कार्यवाही कर रहे हैं, उक्त न्यायालय के समक्ष नहीं हैं। इसलिए जिरह का सवाल ही नहीं उठता।''

(19) सन्नारेवन्नाप्पा *भारमजप्पा कलाल कुंचरकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य*[7] मामले *में कर्नाटक* उच्च न्यायालय ने कहा है कि न्यायालय अपने समक्ष गवाह के ''साक्ष्य'' के आधार पर अभियुक्तों के अलावा अन्य व्यक्तियों के खिलाफ अपराधों का संज्ञान ले सकता है। केवल मुख्य परीक्षा में गवाह का साक्ष्य ''साक्ष्य'' का गठन नहीं करता है और न्यायालय इसके आधार पर संज्ञान नहीं ले सकता है, जब तक कि गवाह से जिरह नहीं की जाती है, यह नहीं कहा जा सकता है कि संहिता की धारा 319 में विचार किए गए पूर्ण साक्ष्य हैं। सादृश्य से यह कहा जा सकता है कि यदि गवाह ऐसा करता है कि मुख्य परीक्षण के बाद प्रतिपरीक्षा के लिए प्रस्तुत नहीं होता है, न्यायालय को ऐसे अधूरे साक्ष्य पर कार्रवाई करने से रोका जाएगा क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ केवल परीक्षा प्रमुख से ''साक्ष्य'' है।

(20) विरेन्द्र *सिंह बनाम* यू. *पी. राज्य*[8] में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ''ऐसे मामले हो सकते हैं जहां किसी व्यक्ति के खिलाफ साक्ष्य पहले से ही पर्याप्त है और यह समन आदेश पारित करने के लिए अभियोजन पक्ष के गवाह की प्रतिपरीक्षा के निष्कर्ष की अनावश्यक प्रतीक्षा करेगा। वास्तव में जो आवश्यक है वह यह है कि जिस व्यक्ति को तलब करने की मांग की गई है, उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों और एकत्र किए गए ''साक्ष्य'' और इस संतुष्टि के लिए कि उसके खिलाफ *प्रथम दृष्टया* मामला है, न्यायिक दिमाग का उपयोग किया जाना चाहिए।

[6] 1996 Crl. L.J. 749
[7] 1991 Crl. L.J. 21
[8] 1992 Crl. L.J. 2825.

(21) एच. के. एल. भगत *बनाम* राज्य[9] में सतनामी ने शपथ लेते हुए कहा कि उनके पति की कथित तौर पर 1984 के दंगों के दौरान हत्या कर दी गई थी। सतनामी बाई से 15 जनवरी, 1996 को मामले में गवाह के रूप में पूछताछ की गई थी। उसने कहा कि मुकदमे का सामना कर रहे अभियुक्त व्यक्तियों के अलावा दो और अभियुक्त व्यक्ति भी उसके पति के दंगे, लूट और हत्या में शामिल थे और इसके अलावा उसने विशेष रूप से उनका नाम लिया। इसके कारण अभियोजक ने उनके खिलाफ भी कार्यवाही करने के लिए एक आवेदन दायर किया। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, बयान पर ध्यान देते हुए, *इस निष्कर्ष* पर पहुंचे कि उक्त दोनों के खिलाफ दंगा, हत्या और लूट का प्रथम दृष्टया मामला था। धारा 319 सी.आर.पी.सी. के तहत दायर याचिका को अनुमति दी गई और उन व्यक्तियों को मुकदमे के लिए अदालत में लाने का निर्देश दिया गया।

(22) इस आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी कि चूंकि सतनामी बाई से केवल उनके बयान के आधार पर जिरह नहीं की गई थी, इसलिए आरोपी व्यक्तियों को संहिता की धारा 319 के तहत तलब नहीं किया जा सकता था। इस तर्क को खारिज करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि संहिता की धारा 319 की उप-धारा (1) गवाह से जिरह करने का अधिकार रखने वाले पक्षों के बीच साक्ष्य से संबंधित नहीं है। यह एक ऐसे व्यक्ति से संबंधित है जो अभी तक आरोपी नहीं है और इसलिए उसे गवाह से जिरह करने का कोई अधिकार नहीं है। वह कार्यवाही के लिए एक अजनबी है और इस प्रकार इस सवाल से बेपरवाह है कि क्या कार्यवाही में गवाह से पहले से ही व्यवस्थित अभियुक्त द्वारा जिरह की गई है या नहीं। वह तस्वीर में तभी आएगा जब प्रक्रिया जारी की जाती है। यहां तक कि इस स्तर पर भी जब अदालत इस सवाल पर विचार कर रही है कि उसे तलब किया जाना चाहिए या नहीं, तो वह एक अजनबी बना रहता है क्योंकि यह एक ऐसा सवाल है जो अदालत और शायद केवल शिकायतकर्ता से संबंधित है। उस दृष्टिकोण से देखे जाने पर शिकायतों (संहिता के अध्याय 15) से संबंधित प्रावधानों के बारे में सोचा जा सकता है, जहां बयानों के तहत केवल मुख्य परीक्षा के रूप में होते हैं और उनका परीक्षण परीक्षा के आधार पर नहीं किया जाता है। धारा *319 (1)* के तहत अदालत समान रूप से कार्य करती है और इस प्रकार मुख्य परीक्षा के आधार पर ही अपना प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण बना सकती है। इस प्रकार ''साक्ष्य'' शब्द के आसपास उठाए गए विवाद के संबंध में।

(23) इस प्रकार उस आदेश में कोई कमजोरी नहीं पाई गई जिसके तहत संहिता की धारा 319 के तहत याचिका को बयान के आधार पर अनुमति दी गई थी, यानी गवाह सतनामी बाई की मुख्य परीक्षा।

(24) अब तक उन चार अभियुक्त व्यक्तियों ने, जो सत्र मुकदमे का सामना कर रहे हैं, विवादित आदेश पर आपत्ति नहीं जतायी क्योंकि वे इस आपराधिक संशोधन में याचिकाकर्ता नहीं हैं और यह सही है क्योंकि उन्होंने खुद पीडब्लू 1 बाल कृष्ण से जिरह करने से इनकार कर दिया था। इसलिए, अपने आचरण से वे उक्त आदेश को चुनौती देने से वंचित हो जाते हैं। वे एक ही सांस में अनुमोदन और खंडन नहीं कर सकते हैं।

(25) जहाँ तक याचिकाकर्ताओं का संबंध है, उन्हें उस स्तर पर जिरह का कोई अधिकार नहीं था जब विवादित आदेश पारित किया गया था क्योंकि उस तारीख तक उन्हें आरोपी व्यक्तियों के रूप में तलब नहीं किया गया था।

[9] 1996 Crl. L.J. 1889.

(26) आर. जे. *लखिया बनाम* गुजरात *राज्य*[10] *पर* भरोसा करते हुए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं को भी संहिता की धारा 319 के तहत एक आरोपी के रूप में तलब किए जाने से पहले नोटिस किए जाने और सुने जाने का अधिकार है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आर. जे. लाखिया के मामले (उपरोक्त) में, एक वरिष्ठ अधिवक्ता को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत आरोपी के रूप में तलब किया गया था, जब अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ धारा 420, आई. पी. सी. के तहत मुकदमा चल रहा था। सत्र सुनवाई के दौरान बाई कमला से पूछताछ की गई और उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में तथ्यों को सुनाया। उसका जिरह नहीं किया गया था। एक अन्य गवाह, बैंक के क्लर्क, गिरीश पांड्या से भी पूछताछ की गई। उनकी जिरह भी टाल दी गई थी। इस स्तर पर, लोक अभियोजक द्वारा वरिष्ठ अधिवक्ता को अभियुक्त के रूप में तलब करने के लिए संहिता की धारा 319 के तहत एक आवेदन दायर किया गया था। अधिवक्ता को सुने बिना सत्र न्यायालय और यहाँ तक कि जब सबूत अभी तक पूरा नहीं हुआ था क्योंकि गवाहों से जिरह नहीं की गई थी, तो आवेदन की अनुमति दी और आरोपी को तलब किया। इन तथ्यों के आधार पर गुजरात उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने तलब आदेश को रद्द कर दिया था। लेकिन, उचित सम्मान के साथ, मैं उसी दृष्टिकोण से *सहमत नहीं हो* पा *रहा हूं। हाल ही* में, राज किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य[11] मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया है:—

> "आरोपमुक्त अभियुक्त को बुलाकर या फिर से बुलाकर अभियुक्त को जोड़ने की अनुमति, और वह भी अभियुक्त को सुने बिना, केवल धारा 319 दंड संहिता द्वारा प्रदान किए गए तरीके से दी गई है। मुकदमे के दौरान प्रस्तुत साक्ष्य पर, और किसी अन्य तरीके से नहीं।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं को संहिता की धारा 319 के तहत निचली अदालत द्वारा तलब किए जाने तक उन्हें गवाह बाल कृष्ण से जिरह करने का कोई अधिकार नहीं था।

(27) इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह अब सुसंगत *नहीं* है कि ऐसा अभियुक्त जिसके खिलाफ संहिता की धारा 319 के तहत आदेश पारित किया गया है, उसे उस आदेश को पारित करने से पहले सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है।

(28) तदनुसार, याचिका में कोई योग्यता नहीं पाते हुए, इसे खारिज कर दिया जाता है।

(29) आदेश की प्रति विचारण न्यायाधीश को प्रेषित की जाए ताकि वह विचारण के साथ आगे बढ़ सके।

एस. के.

[10] 1982 Crl. L.J. 1687.
[11] A.I.R. 1996 S.C. 1931

न्यायाधीश अरुण बी. सहारिया, और न्यायाधीश एच. एस. बेदी, के संमक्ष

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और अन्य,-अपीलार्थी

बनाम

डी. सी. *अग्रवाल*,-उत्तरदाता

***1998* का एल. पी. ए. सं. 364**

9 मार्च, 1999

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-पेटेंट अपील पत्र,1919-सी.एल. एक्स-बैंक की 8 जून, 1982 की पदोन्नति नीति, जैसा कि 23 फरवरी, 1984 की नीति द्वारा संशोधित किया गया है -

(अस्वीकरण: स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय, वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके, और किसी अन्य उद्देश्य के लिया इसका उपयोग नहीं किया जा सकेगा। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।)

रवि अमितोज़

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी